आरम्भ

(प्रथम सर्ग)

संसार छन्द

चल रहा सुशीतल मन्द पवन किशलय-किशलय को छूता ।
वन प्रान्तर है यह शान्त सदा हिंसा से रहा अछूता ।
शिंशपा, तमाल, कदम्ब, निम्ब, सहकार झूमते रहते ।
न्यग्रोध[१], उदुम्बर, तुंग, शाल तरु गगन चूमते रहते ।।०२।।

अश्वत्थ[२], आमलक और विभीतक[३] हैं अशोक वहुतेरे ।
मञ्जुल हैं वञ्जुल[४] क्षेत्र वेणु दल जम्बू खड़े घनेरे ।
अर्जुन हैं लोध्र मधूक विरल पर श्रीफल की वहुतायत ।
कदली हैं खड़े मनोज्ञ कहीं पर लता फैलती आयत ।।०२।।

तुलसी की पावन गन्ध आ रही सुरभित धूम उठा है ।
पुनः नित्य की भांति शिष्य दल मख में आज जुटा है।
आश्रम गंगा-द्वारस्थ हरण करता जन की जड़ता है ।
पावन सुरसरि है दूर न कुछ कलकल स्वर सुन पड़ता है ।।०३।।

यह है शुभ गंगाद्वार अपावृत द्वार ज्ञान की निधि का ।
मृण्मय से चिन्मय और अनामय हो जाने की विधि का ।
गुञ्जित है मंत्रोच्चार मोह की निशा निराकृत करता ।
करके अपास्त[५] क्षुद्रता नवल उत्साह हृदय में भरता ।।०४।।

केवल कुवृत्ति का दमन और होता वस मन का मारण ।
होते सव गुरु उद्योग मनुज वन जाने को साधारण ।
पल्लव होते बस पतित तीक्ष्णता मात्र दर्भ में होती ।
केवल हरि चर्चा जात प्रेम की धारा नयन भिगोती ।।०५।।

मन से निष्कासित राग सुमन की शरण लिए जीवित है ।
पाकर आश्रम अनुकूल विवर्धित सत्य परम उपकृत है ।
ढूँढी रजनी की क्रोड तमस ने उर से हुआ तिरोहित ।
छिपता फिरता वह स्वयं करेगा किसको अरे विमोहित ।।०६।।

है ग्रहण यहाँ पर नाम मात्र उस अन्तरिक्ष घटना का ।
देता है सोम[६], सोमरस केवल चातुर्मुख[७] रचना का ।
वलि[८] परिसीमित है मात्र कथा तक वामन की चर्चा में ।
निजता को अर्पित कर देते मुनिजन शिव की अर्चा में ।।०७।।

है वेधन क्रिया यहाँ परिसीमित मात्र चक्र[९] भेदन तक ।
छेदन होता व्यवहार्य यहाँ पर तृष्णा उच्छेदन तक ।
विग्रह का पटु उल्लेख मात्र है शुक्र नीति में आता ।
सागर मन्थन-जनिता वारुणि[१०] से ही रहता बस नाता ।।०८।।

सार छन्द

मात्र नकुल हैं छिद्रान्वेषी छात्र न कुल के द्वेषी ।
दीर्घ सूत्रता ऊर्णनाभ[११] में चञ्चलता कपि देखी ।
केलि कपोतों तक सीमित है और शिखी तक नर्तन ।
कम्पन सीमित है कदली तक लहरों तक आवर्तन ।।०९।।

आर्त यहाँ पर भक्त हठी हैं केवल निस्पृह योगी ।
स्वस्थ[१२] यहाँ आत्मज्ञ इतर जन केवल हैं भव रोगी ।
आसन जय है काम्य यहाँ पर केवल योगार्थी को ।
यम प्रियता निर्ममता शोभित करती धर्मार्थी को ।।१०।।

इडाविजयतत्पर सब साधक नहीं इडा[१३] जय कामी ।
नहीं पिंगलाकांक्षी[१४] कोई पिंगलाक्ष[१५] पद कामी ।
नहीं प्राण के बस में योगी पंच प्राण के शासक ।
मणि से क्या आकर्षित होगा मणिपुर[१६] का अधिशासक ।।११।।

यहाँ अपालित शुक भी कहते राम-राम प्रति वासर ।
मुनि का कर अनुकरण पहनते रुद्राक्षों को वानर ।
खग हैं बसे असंख्य क्योंकि रक्षित हैं उनके शावक ।
वन जाते हैं वटुक मृगी के छौनों के अभिभावक ।।१२।।

भीति मात्र है पापकर्म से चिन्ता पर उपकृति की ।
द्वेष, द्वेष से और उपेक्षा रहती जग अनुरति की ।
रिपुता केवल काम क्रोध से मैत्री सकल जगत से ।
विगत-विगत का भार नहीं कुछ बाधा है आगत से ।।१३।।

मात्र द्विरद मदयुक्त मुखरता मण्डूकों में मिलती ।
पर अवलम्वन मात्र लता में उरग कुटिल गति मिलती ।
घर्षण होता मात्र अरणि का जल का बस आकर्षण ।
यहाँ विजय दिलवाता नर को सहज समग्र समर्पण ।।१४।।

केवल महिष पंक प्रिय, गज ही रज निज देह उड़ाता ।
मात्र कोकिला करे धूर्तता श्वा निज उदर दिखाता ।
मोषक मूषक मात्र और हैं वायस ही कटुभाषी ।
भोगी केवल उरग दीखते कपि श्री फल अभिलाषी ।।१५।।

वर्धित होती स्वस्थ रोहिणी[१७] रोहिणीश[१७अ] क्षय भागी ।
केवल ज्योतिष ज्ञान विवर्धिषु[१८] है तारा अनुरागी ।
प्रतिहिंसा उल्लेख यहाँ वस आता राम चरित में ।
पर जाया दूषण मिलता बस वासव[१९]कृत दुष्कृति में ।।१६।।

तप है सखा समर्थ और सन्तोष नम्र प्रिय भ्राता ।
साधु आचरित धर्म सदा ही रहता मुनि जन त्राता ।
यद्यपि हैं शिर जटिल सरलता आप्लावित नित उर हैं ।
शान्ति और सुख देख यहाँ का लज्जित अति सुरपुर है ।।१७।।

संसार छन्द

होता ग्रहीत है कनक[२०] मात्र शिव पर अर्पित होने को ।
उद्यम रत रहते सुधी यहाँ कल्पित निजता खोने को ।
नहीं सिद्धि है काम्य मात्र साधन सबको भाता है ।
पाकर सुख पाते मनुज यहाँ खोकर मुनि सुख पाता है ।।१८।।

यतिगण के मध्य विराजमान आभामय दिव्य पुरुष हैं ।
उन भरद्वाज का तप विलोक शिव मुदित बलारि[२१] सरुष हैं ।
जीते षड्रिपु शम दम से मानस सदा अमल है रहता ।
रहते रत भूत हितार्थ स्नेह का स्रोत चिरन्तन बहता ।।१९।।

हैं वेद और वेदांग पारगामी जो ज्ञान उदधि हैं ।
अधिकार जिन्हें है धनुर्वेद पर दिव्यास्त्रों की निधि हैं ।
आलोक ज्ञान का विसरित करने का ही जिन्हें व्यसन है ।
एकाग्र ब्रह्म में निशदिन रहता जिनका अविकल मन है ।।२०।।

निष्काम सदा रजमुक्त मना निष्कलुष चरित है जिनका ।
है धवल कीर्ति है कृष्ण वर्ण मुनिवर के मात्र अजिन[२२] का ।
हिंसक प्राणी तक सौम्य हुए तप का प्रभाव ऐसा है ।
गंगाद्वारस्थ विशद आश्रम यह दिव्य धाम जैसा है ।।२१।।

भूषित है उनसे क्षमा, क्षमा जिनका चिर आभूषण है ।
जिनका हर कृपा कटाक्ष त्वरित हरता मन का दूषण है ।
हैं झरती स्नेह सुधा धारा नित मुनि के लोचन युग से ।
वे भरद्वाज द्वापर में लगते प्रतिनिधि गत सतयुग के ।।२२।।

सार छन्द

उपरति है प्रियतमा तितिक्षा तनुजा जिनकी प्यारी ।
श्रेयपन्थ सहचरी साधना धृति अनुजा अति न्यारी ।
श्रद्धा धात्री कुशल और श्रुति परम वत्सला माता ।
बुद्धि सेविका निपुण जगत से उनका ऐसा नाता ।।२३।।

शम बाघम्बर दिव्य और दम ही यति दण्ड उदित है ।
तप सञ्चय है दीर्घ कमण्डलु करुणा सतत स्त्रवित है ।
विविध कामना ही समिधाएं मन मृग की मृगछाला ।
श्वास और प्रश्वास बनी हैं ऋषिवर की जप माला ।।२४।।

सञ्चित किए प्रदग्ध विफल क्रियमाण अकर्ता होकर ।
अब केवल प्रारब्ध बह रहा ऋषि के चरण भिगोकर ।
जगती के कल्याण हेतु जो कोश अन्नमय धारे ।
विचर रहे भूतल पर तापित जन के एक सहारे ।।२५।।

यज्ञ शेष अन्नों पर पालित जिनकी पावन काया ।
जिनको दिखता विश्व मात्र उस एक तत्व की छाया ।
जिनके सहज आचरण ही अब नियम धर्म बन जाते ।
भरद्वाज ऋषि श्रेष्ठ धर्म ध्वज द्वापर मध्य उठाते ।।२६।।

स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर की करके भ्रान्ति निवारित ।
त्रिपुरारी ही अपर जगत में ऋषि होते अवधारित ।
हरि ने किया कोल[२३] बनकर भी ज्यों उद्धार मही का ।
मुनि करते उद्धार मनुज की पंक निमग्रा धी[२४] का ।।२७।।

है भालस्थ विभूति शीश पर किन्तु नहीं चढ़ती है ।
छिन्न मूल वीरुध[२५] सी तृष्णा स्वयं यहां झड़ती है ।
हैं हिरण्यरेता[२६] साधन भी और साध्य भी जिनके ।
क्या हिरण्य का मोह पास आ सकता उनके मनके ।।२८।।

भव अर्चारत सदा नहीं करते ऋपि भव की अर्चा ।
निष्ठित सतत् ब्रह्म में करते मात्र न मौखिक चर्चा ।
पार्थिव[२७] से क्या चाह उन्हें जो पार्थिवता को जाने ।
जिनकी चरण रेणु को नृपगण हरि प्रसाद सम मानें ।।२९।।

संसार छन्द

चल दिए सशिष्य मुनीन्द्र एक दिन करने स्नान नदी में ।
करते थे अवगाहन प्रातः नित पावन विष्णुपदी[२८] में ।
थे कान्तिहीन उडुवृंद शुक्र ही दीप्तवान् था नभ में ।
सप्तर्षि क्षितिज उन्मुख लगते थे अवतितीर्षु[२९] से जग में ।।३०।।

जान निशा अवसानप्राय कलरव विहंग करते थे ।
पूर्वाशा[३०] में अरुणिमा अरुणसारथि[३१] किंचित भरते थे ।
शिष्यों से कहने लगे यतीश्वर देखो जह्नुसुता[३२] को ।
आयी निज धाम विसार धरा पर अनुपम प्राण हिता को ।।३१।।

विधि की ही करूणा ज्यों वसुधा पर आयी मूर्तिमती हो ।
मानो पावनता हुई तरल अघ[३३] क्षालनार्थ वहती हो ।
अथवा हरि की वत्सलता ही जग के हितार्थ उमड़ी हो ।
मुक्ता की आयत लड़ी हिमालय के शुभ कण्ठ पड़ी हो ।।३२।।

सगरात्मज तारण व्याज जगत का तारण करने आयी ।
किल्विष[३४] का दुर्वह भार धरा पर धारण करने आयी ।
कहती जो कथा भगीरथ के अनवरत उग्रतर तप की ।
शमदायिनि हरती क्लान्ति शान्तिदा हारिणि भव आतप की ।।३३।।

अथवा भारत माता का ही पय सन्तति हित उमगा है ।
हिमगिरि का शुभ आशीष या कि यह विमल नीर अपगा है ।
या फिर है सङ्घनित विश्वजल तत्व गूढ़ रसवत्ता ।
या सत्प्रवृत्ति की आत्मा श्रद्धा की अभिव्यक्त महत्ता ।।३४।।

सार छन्द

सकल सृष्टि ही है प्रवाहमाना मानो यह कहती ।
नहीं एक पल को भी संसृति थिर होकर है रहती ।
कहती वीचि सृष्टि ही सारी उर्मि ब्रह्म जलनिधि की ।
सबका विलय नियत है निश्चित यहाँ आयु भी विधि[३५] की ।।३५।।

पर मिटती क्या लहर रूप आकृति ही है बस खोती ।
सुरसरि से उत्थित सुरसरि है फिर सुरसरि ही होती ।
मृण्मय चिन्मय भेद अवास्तव चिन्मय ही है सारा ।
गँदली होकर भी रहती है गङ्गा ही जल धारा ।।३६।।

संसार छन्द

अनुतट सिकता पर बढ़े पवन कुछ चला झकोरे खाकर ।
प्राची में सविता के स्वागत में हँसी उषा इठलाकर ।
तट पर जो देखा दृश्य स्तम्भित हुए एक क्षण मुनिवर ।
सद्यः स्नाता षोडशी पहनती दिखी वहाँ पर अम्बर ।।३८।।

पर स्त्रस्त हुआ परिधान विधान यही था उस पल विधि का ।
हो गया अनावृत गात्र मात्र क्षण में मधुमय स्वर्निधि[36] का ।
कौंधी सौदामिनि सी मन में विक्षोभ हुआ अतिभारी ।
चेतना हुई संकेन्द्रित उस अनवद्यांगी[37] पर सारी ।।३८।।

है इसका रूप अनूप उतर क्या आयी स्वयं रसिकता ।
स्वर्णाभ हुआ सुरसरिता पय द्युतिमती हुई है सिकता ।
श्वेताभ कनक छवि को संज्ञापति[38] देते हैं अरुणाई ।
हीरक माणिक पुखराज कान्ति मिश्रित सी यह तरुणाई ।।३९।।

है पुण्डरीक सी देह कोकनद सा अनवद्य वदन है ।
इन्दीवर से युग नयन अंग कुसुमायुध[39] हृद्य सदन है ।
पार्थिव हो सकता नहीं रूप यह दिव्य लोक का निश्चय ।
मृण्मय न शरीर कभी कर सकता इस आभा का सञ्चय ।।४०।।

उर्मिल सी थी वपुयष्टि वृत्त उरू ज्यों विकसित कदली हो ।
छाये घन श्यामल अलक मेरू पर ज्यों काली बदली हो ।
थी गुरू-कलत्र-युत[40] क्षीण-मध्यमा मदिरेक्षणा घृताची ।
उन्नत उरोज पुलकिता-देह थी राग युक्त ज्यों प्राची ।।४१।।

आ गया अपूर्व विकार रजोमय झंझा उठा हृदय में ।
रतिपति रति दोनों मिले चित्त के पावन विशद निलय में ।
वह गया रेत[४१] जो स्थापित कर वह द्रोण[४२] मध्य ऋषि लौटे ।
हो गये तपस्या लीन पुनः कर क्षीण मनोरथ खोटे ।।४२।।

हो गया द्रोण से प्रकट समय पर बालक अति ऊर्जस्वी ।
उत्पत्ति स्रोत से नाम पड़ गया द्रोण हुए सुयशस्वी ।
कुम्भजवत्[४३] उद्भव हुआ धाम भी ऋषि समान था पाया ।
उमड़ा वात्सल्य प्रवाह मोद था मुनि आश्रम में छाया ।।४३।।

ऋषि का अपत्य वह बाल अयोनिज और परम अद्भुत था ।
अवयव सौष्ठव प्रतिमान पुष्ट वपु श्यामल आभायुत था ।
वर्धित हो चला सुकेश मोहता जन को निज लीला से ।
प्रज्ञों को भी विस्मित करता निज बुद्धि ग्रहण शीला से ।।४४।।

अस्त्रों के प्रति अनुराग विराग उसे था अभियाचन से ।
उद्योग-पक्ष धर सदा नहीं सन्तोष शास्त्र वाचन से ।
सीखे समस्त वेदांग वेद वह बालक परम तपस्वी ।
निष्णात हो गया शीघ्र नीति में बलयुत महामनस्वी ।।४५।।

जो अग्निदेव से हुए समुद्गत अग्निवेश कहलाए ।
थे भरद्वाज के शिष्य उन्होंने सारे अस्त्र सिखाए ।
उनके समीप बालक को भेजा विद्यार्जन करने को ।
आग्नेय अस्त्र जैसे महास्त्र विधिवत अधीत करने को ।।४६।।

ऋषि भारद्वाज के मित्र पृषत थे पाञ्चालों के अधिपति ।
उनके प्रिय तनय द्रुपद को भी वांछित थी अस्त्रों में गति ।
द्विज बालक द्रोण, कुमार द्रुपद दोनों का सख्य गहन था ।
शुभ अग्निवेश आश्रम में दोनों का लगता अति मन था ।।४७।।

जाते दोनों वन में लेने लकड़ियाँ होम निपटाकर ।
चढ़ जाते ऊँचे वृक्षों पर कपि की कुशलता दिखाकर ।
आते सव शिष्यों से पहले गुरूवर हर्षित होते थे ।
आचार चपलता भरे उभय के गुरू मर्शित होते थे।।४८।।

कट जाती थी जब त्वचा द्रुपद की दर्भ[४४] ग्रहण करने में ।
तव द्रोण विहित परिचर्या आती काम घाव भरने में ।
लाते वे औषधि खोज दौड़ कर जाते तत्परता से ।
आती विह्वलता विपुल सखा की किञ्चित आतुरता से।।४६।।

मारा वृश्चिक ने डंक एक दिन द्रौपद वाम चरण में ।
हो गये त्वरित सन्नद्ध द्रोण सागन्धी[४५] व्यथा हरण में ।
पर स्वयं हुए विचलित भूले पद वहुशः अर्ध चरण में ।
तव मन्त्र हो सका सफल द्रोण का विष के निराकरण में ।।५०।।

भूले अटवी में मार्ग एक दिन दोनों हुए क्षुधाकुल ।
पर सुकुमार कुमार हो रहा प्रतिक्षण दुर्वल आकुल ।
मिल गया एक उत्तुंग विटप फल जिसके लगे शिखर पर ।
आंखें थीं उसकी लगीं द्रोण के कार्मुक चढ़े विशिख[४६] पर ।।५१।

और एक पल में ही देखा गिरी फलों की धारा ।
हो गयी लक्ष्य की सिद्धि क्षुधा से हुआ त्वरित छुटकारा ।
तब कहने लगा कृतज्ञ द्रुपद हे सखा! सुनो मम प्यारे ।
तुम बने आपदा में हो बहुधा मेरे परम सहारे ।।५२।।

अब से जो मेरा है तन, मन, धन होगा सकल तुम्हारा ।
देखेगा सारा जगत अनश्वर निर्मल सख्य हमारा ।
झट कहा द्रोण ने स्वयं सिद्ध यह वचन न तुम दोहराओ ।
है स्नेह सदा निरपेक्ष, भाव मत कुछ विनिमय का लाओ ।।५३।।

कान्तार मध्य झपटा तरक्षु[४७] जब कुम्भज पर गुर्राकर ।
पार्षत का तत्क्षण उठा परशु नभ में स्व दीप्ति बिखराकर ।
आघात किया शिर मध्य गिरा आहत होकर मांसार्थी ।
रव सुनकर आए दौड़ साथ के विस्मित सब विद्यार्थी ।।५४।।

विद्यार्जन हुआ समाप्त मोदमय काल गया अनजाना ।
गुरु सन्निधि में कर लिया शास्त्र अभ्यास जहाँ मनमाना ।
अब वह आश्रम छोड़ते समय सबके मन थे अति भारी ।
गुरु माता का वात्सल्य छूटता गुरु भी अति हितकारी ।।५५।।

पाञ्चाल कटक से आया रथ पृषतात्मज को ले जाने ।
ज्ञानी कुम्भज, कोमल कुमार लोचन थे लगे बहाने ।
ले विदा हो गया प्रस्थित राज तनय महार्घ[४८] उस रथ से ।
उत्थित रज से धूमिल दर्शन पर दृष्टि न हटती पथ से ।।५६।।

गीतिका छन्द

विलग होते चिर सखा मन उभय के अति खिन्न थे ।
साथ खेले पढ़े अब तक पन्थ होते भिन्न थे ।
एक जा शासक बनेगा विक्रमी श्रीमान हो ।
दूसरा साधक बनेगा यशस्वी धीमान हो ।।५७।।

कौन जाने मिलन होगा कब कहाँ किस रूप में ।
चलेगा जीवन पथिक कब छाँव में कब धूप में ।
ज्ञान गौरव तप तितिक्षा सत्य आर्जव मित्रता ।
हों विवर्धित लोक में उत्थान पाए क्षिप्रता ।।५८।।

द्रुतविलम्बित छन्द

प्रखर दीप्ति धरे सविता चढ़े,
गगन में कुछ ऊपर शीघ्र ही ।
सकल सत्व प्रपीड़ित घर्म से,
घन निकुञ्ज चले अब ढूँढते ।।५९।।

सन्दर्भ सूची

१. वट वृक्ष, २. पीपल, ३. बहेड़ा, ४. बेंत, ५. दूर करके, ६. चन्द्रमा, ७. ब्रह्मा की, ८. यज्ञबलि, दैत्यराज बलि, ९. योगशास्त्र में वर्णित छः चक्र, मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा, सहस्रार, १०. मदिरा, ११. मकड़ी, १२. स्व : आत्म में स्थित, १३. योग में वर्णित चन्द्र नाडी, पृथ्वी, १४, स्वर्ण, १५. शिव जी, १६. योग वर्णित नाभि के समीप मेरुदण्डस्थ, तृतीय चक्र, १७. गाय, १७ अ. चन्द्रमा, १८. वढ़ाने का इच्छुक, १९. इन्द्र, २०. धतूरा, स्वर्ण, २१. इन्द्र, २२. काला, मृग चर्म, २३. वराह, २४. बुद्धि, २५. लता, २६. अग्नि, शिव, २७. राजा, २८. गंगा जी, २९. अवगार लेने के इच्छुक, ३०. पूर्व दिशा, ३१. सूर्य, ३२. गंगा, ३३. पाप, ३४. पाप, ३५. ब्रह्मा, ३६. स्वर्ग की संपदा स्वरूप, ३७. मनोहर अंगों वाली, ३८. सूर्य, ३९. कामदेव, ४०. बड़े नितम्बों वाली, ४१. वीर्य, ४२. काष्ठ का पात्र, ४३. अगस्त्य ऋषि, ४४. कुश, ४५. मित्र की, ४६. बाण, ४७. लकड़बग्घा, ४८. मूल्यवान।

❖